विक्रम

(सप्तम् सर्ग)

सरसी छन्द

कौरवेन्द्र के युद्ध शिविर में, छायी थी अव शान्ति ।
नहीं किसी भी योद्धा के मुख, पर दिखती थी कान्ति ।
सभी महारथ चिन्तातुर थे, सब थे आज निराश ।
खोकर परम अजेय द्रोण को, हुआ शक्ति का ह्रास ।।१।।

कुरुपति बैठे थे आसन पर, मौन और नतशीश ।
देख रहे थे वृथा शून्य में, विचलित सभी महीश ।
रात हुई पर अपने शिविरों, में न गये थे वीर ।
अश्वत्थामा को विलोक, कुछ के दृग में था नीर ।।२।।

कहने लगे सुयोधन वीरो, इस विधि रहो न मौन ।
इस विपदा से आज उवरने, का उपाय है कौन ।
सभी शान्त थे और दुखी भी, सूझा नहीं उपाय ।
कुरु सेना की कठिन विजय में, होगा कौन सहाय ।।३।।

कुरुपति[१] हुए व्यग्र देखा तव, द्रौणायनि[२] की ओर ।
हे सम्मान्य! बँधी है तुमसे, आज आश की डोर ।
गुरू तो गये हुए हम सब इस, बेला आश्रयहीन।
चिन्ताकुल हो रही हमारी, प्रज्ञा परम मलीन ।।४।।

अव गुरुपुत्र तुम्हीं आश्रय हो, विज्ञ और नीतिज्ञ ।
शोकतप्त हो तदपि दिखाओ, पथ हमको थिर-प्रज्ञ ।
ज्ञात तुम्हें गुरुगुरु[३] सम सारे, अङ्ग सहित हैं वेद ।
भार्गववत[४] प्रत्यक्ष तुम्हें हैं, विविध नीति के भेद ।।५।।

देख अवस्था विषम स्वदल की, गिरा समय अनुकूल ।
बोले द्रोणतनय पार्थिव[5] से, अपना गुरू दुख भूल ।
कार्य सिद्धि के हेतु दक्षता राग योग शुभ नीति ।
किन्तु साथ इनके आवश्यक, बली दैव की प्रीति ।।६।।

भूपतियों का और सैनिकों, का तुम पर है राग ।
बल कौशल है उनमें, दृढ़ है अतः दक्षताभाग ।
क्षीण हुई फिर भी पुष्कल[6] है, नृप साधन सम्पत्ति ।
उचित नीति का आश्रय लेकर, टालें विषम विपत्ति ।।७।।

दैव नहीं अनुकूल हमारे, रहा अभी तक आर्य ।
किन्तु न रहो निराश करो अब, नीति युक्त यह कार्य ।
कुरूदल के उत्कर्ष हेतु तुम, करो चमूपति कर्ण ।
है सपार्थ पाण्डवदल जिनके, सम्मुख परम विवर्ण ।।८।।

जिसने अपने बाहुसार[7] से हरा दिए मगधेश[8] ।
एक यान पर बैठ पराजित, किए समस्त नरेश ।
यही तीसरे हैं स्वपक्ष में, परशुराम के शिष्य ।
सिद्ध इन्हें दिव्यास्त्र भूरिशः, हैं सर्वथा अधृष्य ।।९।।

दल के सञ्चालन में हैं ये, त्रिनयन[9]-तनय समान ।
और इन्हें हैं प्रबल वैरि के , बल विक्रम का ज्ञान ।
अर्जुन-दर्प-विमर्दन का प्रण, लिया कर्ण ने ठान ।
कर सकते बस अंगराज यह दुष्कर कार्य महान ।।१०।।

सबने मानी और प्रशंसित, हुई द्रौणि की बात ।
कुरु ने कहा बनो बलनायक[10], करो सपत्न[11] निघात ।
अङ्गीकृत अनुरोध अङ्गपति[12], करो धरो यह भार ।
वैरि विनाशक बनो विजय का, पहनो दुर्लभ हार ।।१३।।

थे अतिरथी पितामाह सुर को, भी अजेय आचार्य ।
किन्तु स्नेहवश नहीं कर सके, पाण्डवेय-क्षय कार्य ।
तुम हो शूर महान विक्रमी, मुझको है विश्वास ।
पाँचो पाण्डव कल संगर[१३] में, लेंगे अन्तिम श्वास ।।१४।।

चले दण्डनायक वसु[१४] प्रातः, सज्जित कर निज सैन्य ।
आज बचा सकता अरिबल को, मात्र समर्पण दैन्य ।
हुआ युद्ध अतिघोर पट गया, लाशों से कुरूक्षेत्र ।
विषमनयन[१५] ने मानों खोला, आज तीसरा नेत्र ।।१५।।

किन्तु अजेय प्रतीत हो रहे, पाण्डवदल के वीर ।
भीम-गदा का बना लक्ष्य नृप क्षेमधूर्ति रणधीर ।
विन्द और अनुविन्द मारकर, गरज रहा युयुधान ।
केकय के कुमार दोनों ही गिरे मृगेश[१६] समान ।।१६।।

लगा भागने तब कौरवदल, आहत और सभीत ।
बढ़े अकेले अश्वत्थामा, क्रोधित और अभीत ।
बली भीम से हुआ द्वंद्व फिर, उनका अतिशय घोर ।
ज्यों अन्धक से लड़े जगत के, रक्षक रुद्र अघोर[१७] ।।१७।।

बेधा सकल शरीर वृकोदर, का शर मार असंख्य ।
इतना उग्र नहीं देखा था, देवों ने भी संख्य[१८] ।
फेंक रहे हों उदित सूर्यद्वय, ज्यों अपने करजाल ।
ग्रह मानों गिर रहे प्रलय का, आया जैसे काल ।।१८।।

तीन घड़ी तक चले परस्पर, विषम घात प्रतिघात ।
बाणों की होती अजस्त्र[१९] थी, धारामय बरसात ।
चिनगारी उठती बाणों के, ऐसे थे टकराव ।
किन्तु क्लान्ति के नहीं दीखते, उनके मुख पर भाव ।।१९।।

पर[२०] को जीत न पाया, कोई दोनों थे अति वीर ।
रथ में ही गिर पड़े अचेतन, खाकर भीषण तीर ।
दोनों के सारथी उन्हें ले, गये युद्ध से दूर ।
स्वस्थ हुए क्षण में रण अभिरत, हुए द्रौणि वे शूर ।।२०।।

संशप्तक-दल-प्रतिमुख जाते, करने घोर विनाश ।
देखा अर्जुन को तो आए, द्रौणि तूर्ण ही पास ।
ललकारा नर[२१] को कर देखो, मुझसे पहले युद्ध ।
पता चले किसपर हैं अर्कज[२२], समर भूमि में क्रुद्ध ।।२१।।

हँसकर बोले कृष्ण विप्र को, दो अर्जुन कुछ दान ।
अश्वत्थामा तुमसे सीखे, कुछ अस्त्रों का ज्ञान ।
सुनकर क्रुद्ध हुए द्रौणायनि, किए अजस्त्र प्रहार ।
धनु से छूटे बाण व्योम में, करने लगे विहार ।।२२।।

कुछ क्षण में ही ढँके शरों से, कृष्ण और कौन्तेय ।
भूल हुई तब ज्ञात मानते, थे गुरुसुत को हेय ।
किंकर्तव्य-विमूढ़ हुए थे, क्षण भर को तो पार्थ ।
उठा नहीं पाते थे धनु भी, रिपु पर बाण प्रहार्थ ।।२३।।

कोप हुआ तब वासुदेव को, बोले वचन कठोर ।
पार्थ क्षीण क्या हुआ तुम्हारे, भुजदण्डों का जोर ।
नहीं रही क्या धर्मयुद्ध में, तुम्हें विजय की चाह ।
छोड़ रहे क्या हो विमूढ़ फिर, क्षात्रधर्म की राह ।।२४।।

क्या कर में अब नहीं तुम्हारे, दुर्निवार गाण्डीव ।
गत-विक्रम क्या हुए परंतप[२३] हो प्रमाद से क्षीव ।
भूल चुके हो क्या समग्र तुम, धनुर्वेद का ज्ञान ।
देख रहा हूँ द्रोणतनय को, तुमसे हुआ महान ।।२५।।

मृदुता मत धारो हे भारत! जान इसे गुरुपुत्र ।
निशित सायकों से भेजेगा, तुमको आज अमुत्र ।
तब अर्जुन ने द्रोणाङ्गज के, काटे सारे वाण ।
कर न सकोगे द्रौणायनि तुम संशप्तक-दल त्राण ।।२६।।

आहत हुए द्रौणि[२४] ने छोड़े, दश उत्तम नाराच[२५] ।
पीने लगे रक्त कृष्णों[२६] का, ज्यों हो घोर पिशाच ।
तब अर्जुन ने रोषयुक्त हो, प्रतिभट किया विदीर्ण ।
ध्वजा, सारथी, अश्व, रश्मियाँ[२७], क्रमशः हुई विशीर्ण ।।२७।।

भागे अश्व, न अश्वत्थामा, ठहर सके, रण बीच ।
अनियन्त्रित घोटकदल[२८] उनका, स्यन्दन[२९] लाया खींच ।
अपने ऊपर कृपीतनय को आया भारी क्रोध ।
इस परिभव का लेना है अब आशु मुझे प्रतिशोध ।।२८।।

सभी महारथियों से निज को, सदा मानते श्रेष्ठ ।
रण दुर्मद बलवीरों में वे, पाण्ड्यराज थे ज्येष्ठ ।
करने लगे भारती सेना, का भीपण संहार ।
अरि-प्राणों का आज मृत्यु को, देते थे उपहार ।।२९।।

ध्वज सारथी विहीन किए बहु, स्यन्दन किए निरश्व[३०] ।
योद्धाओं को आज वाणमय लगता सारा विश्व ।
गजयूथप अश्वारोही बहु, मर्दित किए पदाति ।
प्राणमोह से भगे चतुर्दिक, आर्त हुए आराति[३१] ।।३०।।

उसे रोकने चले कृपीसुत, सादर कहा नरेश ।
मुझे विदित है शस्त्र ज्ञान में, योद्धा आप विशेप ।
हे बल-बुद्धि निधान आपका, करता हूँ आह्वान ।
करो प्रदर्शित अपने सारे, रणकौशल का ज्ञान ।।३१।।

दोनों वीरों का फिर होने, लगा घोर संग्राम ।
कर्णीविद्ध किए द्रौणायनि, कर अजीव[३२] हयग्राम[३३] ।
छिन्न-भिन्न कर दिए शत्रु शर, ज्या[३४] काटी अति तूर्ण[३५] ।
भरी द्रौणि ने विशिख[३६] जाल से, सभी दिशाएँ पूर्ण ।।३२।।

द्रौणि चक्र रक्षक पहुँचाए, नृप ने तव यमलोक ।
हुए गौतमीतनय[३७] चकित अति, रिपु लाघव अवलोक ।
काटा केतु पाण्ड्य के रथ का, वाजि[३८] किए निष्प्राण ।
कार्मुक[३९] छिन्न किया सारथि के उर में मारा वाण ।।३२।।

रथ भी द्रोणतनय ने अरि का, दिया शरों से तोड़ ।
किन्तु निरायुध[४०] पाण्ड्यराज को, दिया उन्होंने छोड़ ।
पाण्डु वाहिनी की गज़ सेना, का अति घोर विनाश ।
किया कर्ण ने यूथप भागे, लेकर मन में त्रास ।।३४।।

एक करीन्द्र वहाँ से निकला, उस पर चढ़े नरेन्द्र ।
शोभित थे ज्यों ऐरावत पर, चढ़े सवज्र महेन्द्र ।
मलयाचल स्वामी ने फेंका, तोमर परम कटोर ।
दीप्तमुकुट चूर्णित था द्विजका, हुआ शव्द अतिघोर ।।३५।।

आहत सर्प समान द्रोणसुत, तत्क्षण हुए सरोष ।
अव मेरे शर करें शत्रु के प्राणों से परितोष ।
काटे द्विप-पद और किया कर[४१], भी क्षण में ही छिन्न ।
दोनों बाहु और शिर नृप का त्वरित हुआ था भिन्न ।।३६।।

विनता-सुत-हत[४२] उरगद्वय सी, तड़प रही थीं बाहु ।
और लुढ़कता था किरीटयुत, नृप शिर मानों राहु ।
गज शरीर के फिर कर डाले, क्रोधित हो छः खण्ड ।
चार भाग में काटा रिपुतन, मारे बाण प्रचण्ड ।।३७।।

शोभित होते जहाँ युधिष्ठिर, महती सेना बीच ।
वैरि रुधिर से पाण्डव योद्धा, भूमि रहे थे सींच ।
द्रौपदेय सात्यकि परिरक्षित, धर्मराज थे आज ।
निर्भय घूम रहे थे रण में, ज्यों वन में वनराज ।।३८।।

चले गौतमीनन्दन उनके, अभिमुख त्वरित सहर्ष ।
बना मेघ कोदण्ड[४३] वीर का शर का हुआ प्रवर्ष ।
देखा बढ़ा चला आता है, घातक शूर समीप ।
वीरों रोको इस सशंकित, कहने लगे महीप ।।३९।।

द्रौपदेय[४४] शैनेय[४५] युधिष्ठिर, और सभी पाञ्चाल ।
एक साथ ही लगे छोड़ने, द्विज पर अस्त्र कराल ।
श्रुतकर्मा श्रुतकीर्ति शतानिक, और वीर सुतसोम ।
करने लगे घोर रण ऐसा, हर्षित होते लोम ।।४०।।

घायल हुआ वीर भोगी सा, उठता था फुफकार ।
नहीं रोष के उसके अब था, कोई पारावार ।
क्रमशः सबके छेदे उसने मार्गण[४६] मार शरीर ।
शतानीक प्रतिविन्ध्य आदि तब, पीछे हटे प्रवीर ।।४१।।

काट शरासन धर्मराज का, घायल किया सवेग ।
कौन रोक सकता था उसका, प्रभञ्जनी आवेग ।
सात्वत ने काटा तब आयत,[४७] द्रौणायनि-इष्वास[४८] ।
धर्मराज को हुआ विजय का, थोड़ा सा आभास ।।४२।।

कटा धनुष तब सरुष द्रौणि ने, करी शक्ति प्रक्षिप्त ।
स्यन्दन से शैनेय सारथी, सत्वर हुआ निक्षिप्त ।
सात्यकि को शर वर्षा करके, द्विज ने ढँका अशेष ।
भागे तुरगवृंद अनियंत्रित लज्जित हुए नरेश ।।४३।।

यद्यपि अग्रज पाण्डुपुत्र सह दल के दुर्जय वीर ।
मार रहे अब भी कृपीज[४९] के, अपने तीखे तीर ।
अचल-अचल[५०] ही रहता चाहे, हो कितनी भी वृष्टि ।
हँसकर डाली नरपुंगव ने, उन पर अपनी दृष्टि ।।४४।।

फिर बरसाये निशित[५१] अयोमुख,[५२] अरिदल था संत्रस्त ।
आत्म बचाव मात्र में सारे, प्रतिरोधी थे व्यस्त ।
आर्त हो गये पार्थ[५३] कहा तब सुन लो द्रोण कुमार ।
ज्ञात तुम्हारा है बल विक्रम, तुम विद्या आगार ।।४५।।

धृष्टद्युम्न को यदि निज विक्रम, दिखलाओ तो वीर ।
मानूँगा तुम हो आयुधविद्, पिया जननि का क्षीर ।
उग्र तुम्हारे कर्म न तुम हो, द्विज कहलाने योग्य ।
कटु औषधि हो जिससे मिलता, कौरव को आरोग्य ।।४६।।

मात्र निकृन्तनदक्ष तुम्हारा सार्थक यही द्विजत्व[५४] ।
तीक्ष्ण कठोर धवल हिंसामय चर्वण-रस-विषयत्व ।
गुरूवारिधि से प्रकट हुए तुम उच्चैःश्रवा समान ।
जिस पर चढ़ कर दुर्योधन को होता है जय भान ।।४७।।

गुरू आचार्य कल्पतरु जैसे, प्रकटित उनके बीच ।
तुम कीकरवत अङ्गविदारक, पले स्नेह-रस सींच ।
अनूचान[५५] हो खड़े धर्म के विमुख यही क्या ज्ञान ।
मात्र अनयपरिरक्षण में विनियोजित तव विज्ञान।।४८।।

सार छन्द

केवल बौद्धिक ज्ञान भार है
यदि न आचरित होता ।
शास्त्राभ्यासी ज्ञानी होने का
भ्रम घातक ढोता ।
मानचित्र वत शास्त्र सत्य को
करते हैं वस इंगित ।
है अनुभव का विषय परम वह
हो कैसे अभिव्यञ्जित ।।४६।।

कुरु ईडा शम और पाण्डु सेना
क्षय ही तव दम है ।
अर्जुन विशिख तितिक्षा अद्‌भुत
यह द्विजता उपक्रम है ।
धर्म पक्ष त्यागना तुम्हारी
उपरति है अति न्यारी।
और मुमुक्षा रण माध्यम से
तुम्हीं मोक्ष अधिकारी ।।५०।।

विद्याभूषित भी उद्वेजक[५६] मणिधर फणी[५७] समान ।
पालित-व्याघ्र कौरवों के हो क्यों करते अभिमान ।
अमर मात्र वपु नहीं अमरवत गुण धरते तुम धीर ।
वन्दनीय गुरूमाता का है लज्जित तुमसे क्षीर ।।५१।।

शत्रु आ गया हो सीमा पर
संकट गहराया हो ।
ईतिग्रस्त हो देश सविप्लव
सघन तिमिर छाया हो ।
तब राष्ट्रिय हित ही सर्वोपरि
नहीं तर्कणा नय की ।
नर पति निंदा नहीं चिन्तना
केवल हो तब जय की ।।५२।।

संस्कृति का आधार राष्ट्र है
राष्ट्र धर्म का पोषक ।
नहीं रहा यदि राष्ट्र बचेंगे
कहाँ धर्म के जोषक ।
धर्म विवेचन नहीं शस्त्र उद्यम
कर्तव्य अभी है ।
राष्ट्र त्याग नरपति सदोषता
से क्या श्लाघ्य कभी है ।।५३।।

वना अन्नमय कोश जिस धरा
के जल खाद्य पवन से ।
उसकी रक्षा हेतु समर्पित,
यह कृपीज तन मन से ।
केवल बुद्धि पंगु होती है,
यदि निष्क्रिय हो ज्ञानी ।
मात्र असुरता पोषक होता
केवल बल अभिमानी ।।५४।।

सिंहपुच्छकेतनता[५८] करती यही सत्य अभिव्यक्त ।
कर्णादिक सिंहानुगामिता में ही तुम आसक्त ।
नहीं महारथ तुमको माना शान्तनुसुत[५९] ने जान ।
जीवनप्रिय हो कर सकते हो सरुष[६०] नृपति अपमान ।।५५।।

मम वध हेतु समुद्यत हो तुम, यही तुम्हारी प्रीति ।
आश्रम में थे मान्य सखा अव, कौन निभाते रीति ।
सुन विचित्र वाणी पृथाज[६१] की, विहँसे कुम्भजजात[६२] ।
दिया न उत्तर फिर आयुध से, रोके घोर निपात ।।५६।।

नाम युधिष्ठिर बड़े भाव से रखा पिता ने सोच ।
रह पाते न युद्ध में स्थिर तुम होगा उनको शोक ।
द्यूत-व्यसनजित मिथ्याभाषक, कैसे धर्म अपत्य[६३] ।
पुनः धरागतचक्र[६४] प्रवञ्चक[६५] अब न रहे आदृत्य[६६] ।।५७।।

दोनों ही अतिकाय सबल कर कौशल से भरपूर ।
रणदुर्मद रण में प्रयुक्त, पर-बल-मर्दक दृढ़ शूर ।
उभय नृपति पालित, राजाज्ञापालक धृति मति मान ।
अश्वत्थामा हतः अतः था कैसे अनृत विधान ।।५८।।

विश्रुत लोक में रहे आजतक हे पाण्डव अजमीढ़[६७] ।
नहीं अलीकवाद है भ्राता सच ही तुम[६८] अज-मीढ़[६९] ।
अनजाने ही कभी सत्य को पा जाता है लोक ।
वहुलार्थता शब्द की देती अज्ञों को गुरूशोक ।।५९।।

कङ्कनाम वह छद्म नहीं था, हो यथार्थ में कङ्क[७०] ।
अक्ष-समर्पित अवलापति हो, यह सुकीर्ति में पंक ।
निखिल-नृपतिशिर नमन हेतु था, राजसूय का यज्ञ ।
राजेश्वर बनने की लिप्सा से न लोक अनभिज्ञ ।।६०।।

तुम थे यदि धर्मज्ञ द्यूत
आह्वान क्यों न ठुकराया ।
जीवों को भी वस्तु समझकर
तुमने दाव लगाया ।
हैं सव जीव स्वतन्त्र अनश्वर
शाश्वत विभु की छाया ।
पाशों से भी उन्हें क्षुद्रतर
तुमने हन्त! बनाया ।।६१।।

क्यों न उठाओ शस्त्र उसी पर जिससे सीखा ज्ञान ।
गुरू प्रतिमुख शस्त्रोद्यम ही तव कुल का है अभिज्ञान[७१] ।
मयमाया[७२] - विरचित - विराट -प्रासादोत्थित उपहास ।
लाया बुला प्रदर्शनवादी! यह सम्पूर्ण विनाश ।।६२।।

जितना मोहक होता नर को रमणी का शुभहास ।
जितना मादक होता उसका विभ्रम युत परिहास ।
उससे लक्षगुना दाहक है तन्वीकृत[७३] उपहास ।
नहीं सह्य पौरूषविमानता चाहे नर हो दास ।।६३।।

सकल धराजय तुम्हें सुकर था पाये ऐसे बन्धु ।
तुम्हें अमरफल छोड़ भा गया यह गजपुर कर्कन्धु[७४] ।
निपतित होगे सकुल इसी में होगा पश्चाताप।
धर्मराज तुम कर न सकोगे गुरूविषाद परिमाप ।।६४।।

कुन्तीपुत्र कुन्तचालन में तुम हो सबसे श्रेष्ठ ।
आहव का न तुम्हें है धर्मज[७५] अनुभव अभी यथेष्ट ।
अनुजवीर्य-अवलम्बित तुमको नहीं मही है भोग्य ।
मुनिजनसेवा करो विपिन में यही तुम्हारे योग्य ।।६५।।

पाण्डुवर्णता[७६] व्यक्त हो रही रण से इतनी भीति ।
धर्मराजसुत को भी इतनी नश्वर असु में प्रीति ।
तुमको मात्र अनन्त विजय का सुकर रहा है नाद।
नहीं अनन्त विजय अधिकारी छोड़ो यह उन्माद ।।६६।।

जनकवेश्मअभिगमन[७७] लोक में सदा हर्ष का हेतु ।
त्यागो उद्विग्नता तुम्हें स्मार्य आज वृषकेतु[७८] ।
निभृतनिवासनिपुण तुमको प्रिय रहा विराट निकेत ।
अनिभृत[७९] रहो सदैव बुलाता तुम्हें[८०] विराट निकेत ।।६७।।

यद्यपि किया कुकृत्य जयेच्छावश तुमने नरश्रेष्ठ ।
धर्म और धर्मध्वग[६१] मुझको सदा रहे हैं प्रेष्ठ ।
नहीं अचेत निरस्त्र शरणगत पर करता आघात ।
न ही पलायमान अरि पर भी छोड़ूँ बाण[६२] निशात ।।६८।।

भागे सेना छोड़ युधिष्ठिर, संगर[६३] से मुख मोड़ ।
द्रौणायनि तज आर्त शत्रु को चले गये रथ मोड़ ।
एकाकी कृपीज ने इतने, लिए महारथ जीत ।
देख चकित पाण्डवदल था भट भागे सभी सभीत ।।६९।।

तूणक वृत्त

धृष्टद्युम्न को विलोक रोष से भरे हुए ।
द्रौणि थे बढ़े निशात बाण ज्या चढ़े हुए ।
आज युद्धभूमि से न भागना सभीत हो ।
देख लें सभी प्रवीर कौरवेन्द्र जीत को ।।७०।।

पञ्चचामर वृत्त

प्रचण्ड दण्ड पाप का करूँ प्रदान आज मैं ।
रुके अनीति का प्रसार नीचता समाज में ।
किए प्रक्षिप्त धृष्टद्युम्न ने सवेग बाण थे ।
विशेष अस्त्र ज्ञान के प्रभूत वे प्रमाण थे ।।७१।।

कृपीज ने किए निरस्त शत्रु अस्त्र व्योम में ।
प्रवृत्त हो गये पुनीत विप्र युद्ध होम में ।
परन्तु ज्या कटी रुका प्रवेग द्रोण-पुत्र का ।
अमोघ लक्ष्यवेध था अधृष्य वीर शत्रु का ।।७२।।

अतीव क्रुद्ध द्रौणि थे प्रचण्ड बाण छोड़ते ।
चले रथ ध्वजा रथांग शत्रु-अस्त्र तोड़ते ।
निरश्व था शताङ्ग[६४] भूमिसात शत्रुसारथी ।
विशाल खड्ग ले बढ़ा सचर्म[६५] था महारथी ।।७३।।

तूणक वृत्त

काट दी कृपीज ने विशाल खड्ग बाण से ।
ढाल भी कटी हुआ निवृत्त वीर त्राण से ।
भूमि पै गिरा दिया अदम्य द्रौणि न उसे ।
देख के चमूप[८६] की दशा न भीति थी किसे ।।७४।।

वासुदेव ने कहा पृथाज[८७] शीघ्रता करो ।
आपदा महान आज धृष्टद्युम्न की हरो ।
द्रोणपुत्र के विशेष देख लो प्रयास को ।
रोक लो समीप आ गये स्वबन्धु नाश को ।।७५।।

द्रौणि के समीप आशु नन्दिघोष[८८] आ गया ।
हस्तक्षेप द्वन्द्व में पृथाज को सुहा गया ।
तीक्ष्ण तीर विप्र के शरीर में समा गये ।
छोड़ शत्रु को कृपीज यान मध्य आ गये ।।७६।।

थी सरक्त देह रक्त नेत्र कोप से हुए ।
द्रौणि के प्रहार से सुविद्ध पार्थ भी हुए ।
माद्रिसूनु[८९] धृष्टद्युम्न को सवेग ले गये ।
मृत्यु के मुखाग्र से चमूप ज्यों चले गये ।।७७।।

हुआ प्रविष्ट पार्थ का सुतीक्ष्ण बाण अंश[९०] में ।
हुई विशेष न्यूनता कृपीज प्राण अंश में ।
विलुप्त चेतना हुई शताङ्ग-पृष्ठ में गिरे ।
प्रबुद्ध-सारथी-प्रयास से रणादि[९१] से फिरे ।।७८।।

सन्दर्भ सूची

१. दुर्योधन, २. अश्वत्थामा, ३. वृहस्पति, ४. शुक्राचार्य, ५. राजा, ६. प्रचुर, ७. भुजाओं का बल, ८. मगध राज जरासंध, ९. शिव पुत्र कार्तिकेय, १०. सेना नायक, ११. शत्रु, १२. अंग राज कर्ण, १३. युद्ध, १४. कर्ण, १५. शिवजी, १६. सिंह, १७. शिवजी, १८. युद्ध, १९. लगातार, २०. शत्रु, २१. अर्जुन, २२. यमराज, २३. शत्रु को पीड़ित करने वाला, २४. अश्वत्थामा, २५. वाण विशेष, २६. अर्जुन तथा श्री कृष्ण, २७. लगाम, २८. घोड़ो का समूह, २९. रथ, ३०. अश्व हीन, ३१. शत्रु, ३२. निष्प्राण, ३३. घोड़ो का समूह, ३४. धनुष की डोरी, ३५. शीघ्र, ३६. वाण, ३७. अश्वत्थामा, ३८. घोड़े, ३९. धनुष, ४०. निःशस्त्र, ४१. सूँड़, ४२. गरुड़, ४३. धनुष, ४४. द्रौपदी के पुत्र, ४५. सात्यकि, ४६. वाण, ४७. वड़ा लम्बा विशाल, ४८. धनुष, ४९. अश्वत्थामा, ५०. पर्वत, ५१. पैना तीक्ष्ण, ५२. वाण, ५३. पृथा पुत्र युधिष्ठिर, ५४. ब्राह्मण दाँत, ५५. वेदज्ञ, ५६. उद्विग्न करने वाला, ५७. सर्प, ५८. अश्वत्थामा के ध्वज पर सिंह की पूँछ का चिह्न था, ५९. भीष्म, ६०. क्रोध युक्त, ६१. युधिष्ठिर, ६२. द्रोण पुत्र अश्वत्थामा, ६३. सन्तान, ६४. अश्वत्थामा हतो हतः यह झूठी घोषणा करने के पाप से युधिष्ठिर का हवा में चलने वाला रथ पुनः पृथ्वी पर चलने लगा, ६५. धोखा देने वाला, ६६. आदरणीय, ६७. युधिष्ठिर अजमीढ वंश के कहलाते थे, ६८. वकरा, ६९. मूत्रित, ७०. वगुला, ७१. पहचान चिह्न, ७२. मय दानव की कुशलता से निर्मित इन्द्रप्रस्थ का राजभवन, ७३. सुन्दरी, ७४. वेर, अन्धाकुआ, ७५. युधिष्ठिर, ७६. पाण्डु वंशता पीला पन, ७७. युधिष्ठिर के पिता धर्मराज (यम) का निवास यमलोक, ७८. शिवजी, ७९. अगुप्त, ८०. विराट राजा, पर ब्रह्म, ८१. धर्म मार्ग पर चलने वाला, ८२. तीक्ष्ण, ८३. युद्ध, ८४. रथ, ८५. ढाल लिए हुए, ८६. सेना पति, ८७. अर्जुन, ८८. अर्जुन के रथ का नाम, ८९. नकुल, ९०. कंधा, भाग, ९१. रण का अग्र भाग।